Review Of Research
Vol. 3 | Issue.5 | Feb.2014
ISSN:-2249-894X
Available online at www.lbp.world

ORIGINAL ARTICLE

'गुरबाणी इसु जग महि चाणन'

डॉ. रिंपल
एसिसटैंट प्रोफैसर , माता गंगा गर्ल्ज कालेज , तरनतारन.

प्रस्तावना :

गुरू ग्रंथ साहिब में संकलित गुरूवाणी का विषय अति गहन एवं गंभीर है। साधारणता वाणी से तात्पर्य उन शब्दों से लिया जाता है, जिन्हें व्यक्ति अपने भावों की अभिव्यक्ति हेतु बोलने अथवा लिखने में प्रयुक्त करता है। वाक् वाणी अथवा नाम जो किसी विशेष काल अथवा देश से सम्बन्धित नहीं– को दो भागों में विभाजित किया गया है –– आंतरिक और बाहरी, इसे इन नामों से भी जाना जाता है–– अलौकिक और लौकिक, परा और अपरा, फारसी जुबान में इल्म–ए–सीना और इल्म–ए–सफीना आदि।

''वैयाकरण सिद्धान्त मजूषा की कुजिका टीका में कहा गया है:

प्रणश्च द्विविधा परोपर5श्च।
परोब्रह्मात्मक अपराः शब्दात्मक।[1]

कि प्रणव द्विविध होता है ––एक पर और दूसरा अपर। पर ब्रह्मात्मक होता है और अपर शब्दात्मक।

'मुण्डकोपनिषद' में एक जिक्र आता है कि सैनिक नाम का एक गृहस्थ ऋषि भारद्वाज के पास आया और पूछने लगा – महाराज! वह क्या है जिसके जान लेने से सब कुछ जाना हुआ हो जाता है। ऋषि ने उत्तर दिया कि ब्रह्म को जानने वाले यह बताते हैं कि दो प्रकार की विद्या है, एक परा और दूसरी अपरा। अपरा विद्या में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छंद और ज्योतिष शामिल है। इनसे ब्रह्म दर्शन प्राप्त नहीं होता। परा–विद्या वह है, जिससे अविनाशी अक्षर ब्रह्म पाया जाता है, जो कमाई की चीज़ है।

अतः अपरा विद्या शब्दात्मक अर्थात् किताब का ज्ञान, अथवा इल्म–ए–सफीना है, और परा विद्या ब्रह्मात्मक अर्थात् आत्मिक ज्ञान अथवा इल्म–ए–सीना है। अपरा विद्या में वाणी को संतजन चार भागों में विभाजित करते हैं और दार्शनिक और तांत्रिक ग्रन्थों में भी लौकिक वाणी के चार प्रकार मिलते हैं– परा, पश्यन्ती, मध्यमा, बैखरी।

नागेश भट्ट, वैयाकरण सिद्धान्त मजूषा (बनारस, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, सन् 1899) पृ. 389

2 **परावाड्. मूलचकस्था पश्यन्ती नाभिसंस्थिता।।**
ह्रदिस्था मध्यमा ज्ञेया वैखरी कंठदेश्गा।।[1]

अर्थात् परा वाणी मूलाधार चक्र में स्थित रहती है, पश्यन्ती नाभि पर्यन्त आती है, मध्यमा ह्रदय में और बैखरी कंठ से कही जाती है,

महान कोश[2] के अनुसार वाणियों हैंः परा, पश्यन्ती, मध्यमा, बैखरी।

मूलाधार में रहने वाला शब्द परा, मूलाधार में उठके ह्रदय में आने वाला शब्द पश्यन्ती और ह्रदय से कंठ में आया शब्द मध्यमा, मुख से उच्चरित शब्द बैखरी वाणी है।

अतः इस विवेचना से यह स्पष्ट होता है कि अपरा विद्या में वाणी चार प्रकार की है।

बैखरी : जो मुख से, जिह्वा द्वारा कही जाए।
मध्यमा :जो मन से, कंठ चक्र से बोली जाए।
पश्यन्ती : ह्रदय चक्र से ह्रदय के द्वारा जपी जाए और
परा :नाभि चक्र (अथवा मूलाधार) योगी, साधक जन अभ्यास द्वारा जप करके, हिलेर उठाते हैं। इन वाणियों का जाप, साधक जन चित्तवृत्तियों को एकाग्र करने के उद्देश्य से करते है : इन वाणियों का स्थान शरीर के छः चक्रों में आता है :

बावन अखरी में कबीर साहिब कहते हैं :

बावन अछर लोक त्रै सबु कुछ इनही माहि।।
ए अखर खिरि जाहिगे, उहि अखर इन महि नाहि।।

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 340)

तीनों लोकों में देवनागरी के बावन अक्षरों से ही सब रचना की कार्यवाही होती है। यह बावन अक्षर नाशवान है, पर वह अक्षर अर्थात् शब्द ब्रह्म– इन अक्षरों से ऊपर हैं, और इन बावन अक्षरों से वह लिखा अथवा पढ़ा नहीं जा सकता , वह परा विद्या है।

यह बावन अक्षर मनुष्य के भीतर छः चक्रों में मिलते हैं, जो प्राकृतिक हैं किसी मानवीय शक्ति की बनावट नहीं, इसलिए इनको देवनागरी कहा जाता है क्योंकि इन छः चक्रों मं क्रमवार– गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, शिव शक्ति आदि देवी–देवताओं का वास है।

1. नागेश भट्ट, परमलघु मजूबा (बनारस : चौखम्बा संस्कृत सीरीज, सन् 1899), पृ. 389
2. काहन सिंह नाभा, गुरू शब्द रत्नाकर महानकोश, (पटियाला : भाषा वभिाग, चतुर्थी संस्करण) पृ. 484

यही बात गरूड़ पुराण में महर्षि वेद व्यास लिखते हैं कि भगवान विष्णु गरूड़ को समझाते हुए कहते हैं कि शरीर के इन छः चक्रों में देवी–देवताओं का वास है और ये अक्षर इन छः चक्रों में मिलते हैं।

इन छः चक्रों के ऊपर सातवां कंवल सहस्त्रार कंवल है जिसके हज़ार पत्र अथवा दल हैं, जो प्रकाशमान है। वह कंवल सत्यमय, आनंदमय, शिवमय एवं ज्योतिर्मय है और उनमें से 'शब्द ब्रह्म' की ध्वनि हो रही है जो शाश्वत अर्थात् नित्य है। 'ऊं की ध्वनि जो समस्त अस्तित्व का आधार है और समस्त विद्याओं का आधार है वह परा विद्या है।

Review Of Research
Vol. 3 | Issue.5 | Feb.2014
ISSN:-2249-894X Available online at www.lbp.world

श्री गरूड़ पुराण में महर्षि वेदव्यास लिखते हैं :

मुलाधाराः स्वाधिष्ठानं मणिपूरक मेव च।
अनाहत विशुद्धाख्यमाज्ञषद् चकमुच्यते।

अर्थात मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहद, विशुद्ध और आज्ञा ये षठ चक्र है।

मूलाधारे लिङ्ग, देशे नाभ्या हृदि च कण्ठगे।
भुवोर्मध्ये ब्रह्मरान्ध्रे क्रमाच्चक्राणि चिन्तयेत।

अर्थात् मूलाधार, लिड्ग, नाभि, हृदय, कंठ, दोनों भौंहों के बीच और ब्रह्मरन्ध्र मं क्रमचक्रों का चिन्तन किया जाता है।

आधारं तु चतुर्दला नलसम वासान्तवर्णाश्रयं।
स्वाधिष्ठानर्मापि प्रभाकरसम बालान्तषदपत्रकम्।
रक्ताभं मणिपूरक दशदलं डांद्यं पकारान्तकं।
पत्रैद्वदिशभिर्स्वनाहतपुरं हमैं काठान्तावृतम्।

अर्थात् मूलाधार चक्र अग्नि के समान है, उसमें चार पत्र हैं और ये व से स पर्यन्त अर्थात् व श ष स इन अक्षरों के घर हैं, स्वाधिष्ठान चक्र सूर्य के समान है, इसमें ब भ म य र ल, इन अक्षरों से युक्त छः पत्र हैं, मणिपूरक चक्र रक्त वर्ण का है, इसमें दस पत्र हैं जिसमें ड ढ ण त थ ध न प फ अक्षर हैं, अनाहद चक्र सुवर्ण वर्ण का है इसमें बारह पत्र हैं और ये क ख ग घ ड. च छ ज झ ञ ट ठ अक्षर हैं।

पत्रैः सस्वरषोडशैः शशधरज्योर्तिविशुदाम्बुजं।
हसेत्यक्षरयुग्मक द्वयदलं रक्ताभ मात्राम्बुजम्।
तस्मादुर्वगत प्रभासिलमिदं पदमं सहस्त्रच्छंद।
सत्यानन्दमयं सदाशिवमयं ज्योतिर्मय शाश्वतम्।

विशुद्ध चक्र चन्द्र ज्योति के समान है, इसमें सोलह पत्र हैं और इसमें अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लह ए ओ औ अ अः ये अक्षर हैं, आज्ञा चक्र लाल वर्ण का है, इसमें दो पत्र हैं, दोनों ह स अक्षरों से युक्त हैं। उस आज्ञा चक्र से ऊपर हज़ार पत्रों वाला प्रकाशमान कंवल है जो सत्यमय, आनंदमय, शिवमय, ज्योतिर्मय एवं शाश्वत है।

श्रीमद्भगवद्गीता[1] में भी श्रीकृष्ण अर्जुन को गीता का उपदेश देते समय कहते हैं

''त्रैगुणय विषयावेदा निस्त्रैगुणयो भवार्जुन''

भाव, 'हे अर्जुन ! वेद केवल तीन गुणों के विषय का वर्णन करते हैं, यदि तू सत्य को जानना चाहता है तो इन तीन गुणों से ऊपर उठ।'

प्राचीन भारतीय वैयाकरणों ने भी पराविद्या को ब्रह्मात्मक माना है। वे ''अक्षर'' अथवा ''शब्द'' को ब्रह्मस्वरूप मानते हुए कहते हैं कि यह अन्य कुछ नहीं स्वयं ब्रह्म ही है :

''इत्थं निष्कृयमाण यच्छब्दतत्वं निरंजनम्।
ब्रह्मैवेत्यक्षर प्राहुस्तस्मै पूर्णात्मने नमः।।

श्री नागेश भट्ट परा विद्या को ब्रह्मात्मक मानते हुए अपने मत की पुष्टि ''सूत संहिता'' के निम्नलिखित श्लोक उद्धृत करते कहते हैं:

''तदुक्तं सूत संहितायाम् –
पराः परतंर ब्रह्म ज्ञानांदादि लक्षणम।
प्रकर्षे नवं यस्मात्परं ब्रह्म स्वभावतः।''

निष्कर्ष रूप में यह कि ब्रह्म, प्रणव, शब्द–एक ही तत्व हैं निाम भिन्न–भिन्न हैं, किन्तु इनका मूल रूप समान एक ही है।

अब हम श्री आदि–ग्रन्थ में संकलित वाणी के आधार पर इन वाणियों के संदर्भ में जानकारी लेते हैं :

1. श्रीमद्भगवद्गीता, (गोरखपुर : गीता प्रेस, पंचम संस्करण) अध्याय 2 श्लोक 45

बाह्म अथवा बाहरी वाणी को प्रथम पातशाही श्री गुरू नानक देव जी ''पउण की वाणी'' कहते हैं :

''आखणु सुनणा पउण की बाणी इहु मनु रता माइआ।''
(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 24)

जो कहने सुनने में आती है, जो आवाज़ पवन के माध्यम से सुनाई देती है, जिसे सुनकर मनुष्य मन माया में विशेष रूप से उलझ जाता है, वह वाणी 'पउण की वाणी' है।

तृतीय पातशाही श्री गुरू अमरदास जी ब्राह्मवाणी को तीन गुणों में आने वाली व ''ब्रह्म का जंजाल'' कहकर बयान करते हैं:

''त्रैगुण वाणी ब्रह्म जंजाला।।
पड़िवादु वखाणहि सिरि मारे जमकाला।।''
(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 230)

आज भी कहते है कि चार प्रकार की ''खाणी'' व चार प्रकार की ''वाणी'' माया के भ्रम में डालने वाली है, इनमें निकालने वाला मात्र नाम है :

''तेरीआ खाणी तेरीआ बाणी।।
बिनु नावै सभ भरमि भुलानी।।''
(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 226)

दूसरी विद्या परा अथवा आन्तरिक अथवा अलौकिक जो ब्रह्मात्मक है, जिसमें केवल परा–पूर्व नाम की ध्वनि सुनी जा सकती है, जो अक्षरों में बयान नहीं हो सकती जिसे बिना जिह्वा के अंतर में जपा जाता है :

''बिनु जिह्वा जो जपै हिआई।।
कोई जाणै कैसा नाउ।।''

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 256)

श्री आदि ग्रन्थ में आन्तरिक वाणी के पयार्य के रूप में –– 'शब्द', 'अक्षर', 'नाम', 'अखण्ड–कीर्तन', 'अकथ कथा', 'हुकुम', 'अमृत', 'अनहद वाण', 'अनाहद नाद' ––आदि शब्द आए हैं।

गुरू साहिबान के अनुसार यह नाम जो बोलने में नहीं आता, बिना जिह्वा के अन्तर में जपा जाता है, यह ''पउण'' तत्त्वों और त्रैगुणों की सीमा से ऊपर है, यह शरीर के छः चक्रों से ऊपर है।

प्रथम पातशाही श्री गुरू नानक देव जी महाराज तो यहॉ तक कहते हैं कि वह शब्द अथवा 'अक्खर' अर्थात् अक्षर स्वयं मालिक का ही रूप है, उसी से ही निःसृत हैः

''अक्खर नानक आखिउ आणि।।
लहै भराति होवै जिसु दाणि।।

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 250)

आप कहते हैः

''त्रैगुण मेटे खईए सार।।
नानक तारे तारणहार।।''

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 940)

श्री गुरू अमरदास जी फर्माते हैं :

''सची बाणी सचु धुनि सचु सबदु वीचारा।।''

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 56)

''देवसथानै किआ निसाणी।।
तह बाजे सबद अनाहद बाणी।।''

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 974)

गुरू साहिबान के अनुसार, आन्तरिक वाणी सच्ची वाणी है, और उसकी निशानी क्या है, उसमें शब्द का गुण है, ध्वनि है, जो अनाहत भाव बिना आहत, चोट के ध्वनि होती है, वह त्रैगुणों ––सत्, रज, तम –– से परे है।

''गुण गोबिन्द नाम धुनि वाणी।।
सिमृत सासत्र वेद वखाणी।।''

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 196)

यह निर्णय स्पष्ट हो जाने के पश्चात् कि वाणी के दो प्रकार है : लौकिक व अलौकिक अथवा बाहरी या आन्तरिक। लौकिक वाणी को हमारा नमन है, जिससे हमें उस अलौकिक वाणी का संकेत मिलता है, जो सत्यस्वरूप है, दिव्य है, ब्रह्म रूप है, अविनाशी है। यहॉ एक जिज्ञासा उदित

होती है कि ऐसी आलौकिक, समर्थ वाणी कपा बखान कौन कर सकता है, किसके माध्यम से यह ज्ञात होती है। इस जिज्ञासा निवारण के लिए हम श्री आदि ग्रन्थ में संकलित वाणी का आधार लेते हैं। तृतीय पातशाही श्री गुरू अमरदास जी फर्माते हैं :

''सच सबदु सची है बाणी।।
गुरमुखि जुगि जुगि आखि बखानी।।''

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0424)

गुरूमुख अर्थात् सद्गुरू युगों–युगों से सच्ची बाणी का बखान करते आ रहे हैं : यह कोई नई नहीं है।

प्रथम पातशाही श्री गुरू नानक देव जी फर्माते हैं :

अपने मालिक की ओर से मुझे जैसी वाणी आ रही है अर्थात् जो कुदरती है, मैं उसे वैसी ही बखान कर रहा हूँ, अर्थात् वह मेरी मनघंडत नहीं हैः

''जैसी मैं आवै खसम की बाणी
तैसड़ा करी गिआन वे लालो।।''

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 722)

अतः यह स्पष्ट होता है कि गुरूमुख की वाणी, सदगुरू की वाणी उनके निजी अनुभवाधारित होती है। अतः सत्य होती है, अनुभव के बिना वाणी सत्य नहीं, मिथ्या है :

''सतिगुरू बिना होर कची है बाणी।।
बाणी त कची सतिगुरू बाझहु होर कची बाणी।।
कहंदे कचे सुणदे कचे कची आखि वखाणी।।''

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 920)

यहाँ पुनः जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि ''गुरूबाणी'' जो ''सतिस्वरूप'' है, सतगुरू इसका बखान क्यों कर करते हैं? चतुर्थ पातशाही श्री गुरू रामदास जी कहते हैंः

''हरिजन उत्तम उत्तम बाणी मुखि बोलहि पर उपकारे।।
जो जन सुनै सरधा भगति संति करि किरपा हरि निसतारै।।''

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 493)

गुरूमुख परोपकार हेतु बाणी का वाणी का बखान करते हैं। यह आध्यात्मिक–जिज्ञासुओं को लिए मार्ग–दर्शन का कार्य करती हैं जिस पर सच्ची श्रद्धा भक्ति से चल कर जीव हरिपद प्राप्त करता है।

और यह गुरू के मुख से निकला वचन, निकली वाणी कैसी है, सदा समर्थ है, एकदा जिस हृदय में समा जाती है, तो सदैव साथ रहती है, सदैव निभाह करती है, कभी किसी प्रकार नष्ट नहीं हो सकती – जल डुबो नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकती, चोर चुरा नहीं सकता – भाव यह निश्चल आधार हैः

''गुर का वचनु बसै जीअ नाले।।
जलि नहीं डुबै तराकरू नहीं लेवै भाहि न साकै जाले।।''
(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 679)

अतः यह बात स्पष्ट होती है गुरबाणी का अवतरण लोक–कल्याण परोपकार हेतु ही होता है। जगत् के मार्ग–दर्शन हेतु सच्ची रोशनी का कार्य करने के लिए अकाल पुरूख सदगुरू के मुँह से वचन, उपदेश निकलवाता है :

तृतीय पातशाही श्री गुरू अमरदास जी का फरमान है :

''गुरबाणी इस जगु महि चानणु''
(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 678)

गुरू साहिब के प्रस्तुत महावाक्य का आशय यह है कि सृष्टि का जीव अज्ञानता के अंधकार में दिशा ज्ञान खो बैठा है, और भटक रहा है। जीव अपने वास्तविक अस्तित्व से अनजान है जिस कारण उसका पृथ्वी पर आगमन हुआ है। जीव संसारी पदार्थों का ज्ञान कितना ही प्राप्त क्यों नहीं कर लेता उसके अन्तर की अज्ञानता की सघनता में कोई कमी नहीं आती, अपितु अधिक ज्ञानवान होने का मिथ्या अहं अवश्य ही सघन हो जाता है। अज्ञानता के इस अंधकार से निकल सही मार्ग पर जीव तभी आ सकता है जब कोई रोशनी उसे प्राप्त हो जाए। स्वयं के पास रोशनी है नहीं, तो यह आवश्यक हो जाता है कि वह उसका साथ ग्रहण करे जिसके पास रोशनी है, और वह उसे रोशनी प्रदान भी करे।

गुरू साहिब फर्माते हैं कि यह कार्य गुरबाणी करती है ''गुरबाणी इसु जग महि चानणु'' गुरबाणी–भाव गुरू के वचन, अथवा उपदेश जगत् में ''चानणु'' भाव प्रकाश का कार्य करता है।

अतः यहाँ स्वभावतः ही यह जिज्ञासा उदित होती है कि ''गुरबाणी'' क्या है? जिससे जीव को प्रकाश की प्राप्ति होती है, और अंधकार विलीन हो जाता है। ''गुरबाणी'' अर्थात् गुरू की वाणी अब गुरू की वाणी को समझने से पूर्व यह जानना भी आवश्यक है कि 'गुरू' क्या है? 'गुरू' कौन है? इस प्रश्न का उत्तर अति कठिन है क्योंकि 'गुरू' के सम्बन्ध में, गुरू की सामर्थ्य में स्वयं गुरू के अतिरिक्त अन्य कोइ कैसे जान सकता है क्योंकि :

''एवडु ऊंचा होवै कोइ।।
जिस ऊंचे कउ जाणै, सोइ।।''
(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 20)

सर्वप्रथम हम 'गुर' शब्द का आशय स्पष्ट कर लेते हैं। गुरू शब्द 'ग' धातु से निःसृत है जिसका अर्थ है निकलना अथवा समझाना, जो अज्ञान को खा जाता है, और शिष्य को तत्वज्ञान समझाता है वह ''गुरू'' है।

गुरू की पहचान :

गुरू की पहचान के संबंध में पहली बात जो ''गुरबाणी'' समझाती है, वह है कि गुरू वह है जो सद्गुरू है, 'सदगुरू' वह है जो स्वयं परमात्म रूप है, यथा :

''गुर सतिगुरू सुआमी भेद न जाणहु..''
(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 77)

सदगुरू उस निराकार परमेश्वर हरि की प्रत्यक्ष मूर्ति होते हैं जो अपने वचनों से जीव का कल्याण करते हैं : और कोई बडभागी जीव ही उनके वचनों को सत्य मान कर श्रवण करते हैं हरि के चरणों में प्रीति लगाते हैं :

**''सतिगुरू देऊ परतखि हरि मूरति जो अमृत वचन सुनावै।।
नानक भाग भले तिस जनके जो हरि चरणी चितु लावै।।''**

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 226)

**रामचरितमानस में गोसाई तुलसीदास जी फर्माते हैं :
''बंदउ गुरू पद कज, कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज, जासु वचन रवि कर निकर।।''**

अर्थात् मैं उन गुरू महाराज के चरण कमलों की वन्दना करता हूँ, जो कृपा के समुद्र और नर रूप में श्री हरि ही हैं और जिनके वचन महामोह रूपी घने अंधकार के नाश करने के लिए सूर्य–किरणें के समूह है।

हिन्दू शास्त्रों में भी कहा गया है।
**''गुरू ब्रह्मा गुरू विष्णु गुरूर्देवो महेश्वरः
गुरू साक्षात् परब्रह्म तसमै श्री गुरवै नमः।।''**

अर्थात् गुरू ब्रह्मा है, गुरू विष्णु है, गुरदेव ही महेश्वर है, गुरू साक्षात् पारब्रह्म है, उन श्री गुरू को नमन है।

अब यह पहचान स्पष्ट हो जाने के पश्चात् कि सदगुरू वही है जो परमेश्वर ''अकाल पुरूख'' से अभेद रूप हैं, यहाँ पुनः जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि हमें उस ''सुल्तान'' सदगुरू की पहचान कैसे आए क्योंकि हम अपनी बुद्धि के अनुसार तो उसे मियां मियां भाव साधारण व्यक्ति ही जानेंगे, तो यह उसकी 'बढ़ाई' नहीं और पहचान भी नहीं क्योंकि :

''तू सुलतानु कहा हउ मीआ तेरी कवन बढ़ाई।।''

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 795)

अतः स्वयं गुरू से ही, गुरू की पहचान पूछी जा सकती है :

''गुरू की बाणी गुर ते जाती''

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 264)

सदगुरू की पहचान देते हुए पंचम पातशाह श्री गुरू अर्जुन देव जी फर्माते हैं :

**''सति पुरूख जिनि जानिआ सतिगुरू तिसका नाउ।।
तिसकै संगि सिखु उधरै नानक हरि गुन गाउ।।''**

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 286)

अर्थात् जिसने सति पुरूख, परमेश्वर को जान लिया है, जिसका संग पाकर जीव हरि के गुण गायन शुरू कर देता है, और परमपद की प्राप्ति कर लेता है, उसका नाम सतगुरू है :

सतगुरू की तीसरी पहचान चौथी पातशाही के शब्दों में ——

''जिसु मिलिए मनि होइ अनंदु सो सतिगुरू कहीऐ।।
मन की दुविधा बिनसि जाइ हरि परमपदु लहीए।।''

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 269)

गुरू साहिब कहते हैं कि जिसके मिलने से मन का द्वैत–अर्थात्– अपना–पराया, स्वजन–दुर्जन, अमीरी–गरीबी, जीवन–मृत्यु आदि का भेद समाप्त हो जाए, जिससे जीव परमपद की प्राप्त कर ले, और उसका अन्तर आनंद से भर जाए – ऐसी हस्ती को सतगुरू कहा जाता हैं।

तृतीय पातशाही श्री गुरू अमरदास जी के अनुसार ——

''आपि कराए करे आपि जीउ आपे सबदि सवारे।।
आपे सतिगुरू आपि सबदु, जीउ जुगु भगत पिआरे।।''

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 246)

भाव वाणी, सतगुरू और परमेश्वर —— ये पर्याय रूप हैं —— एक ही शक्ति की तीन संज्ञाएं हैं।

इस बाणी को श्री आदि ग्रन्थ में जैसा कि ऊपर अलौकिक बाणी के संदर्भ में भी यह कहा गया है ''अनहद बाणी'', ''अघड़ बाणी'' और ''गुप्ती बाणी'' कह कर भी वर्णन किया गया है :

''अंनहद बाणी पूंजी।।
संतन हथि राखी कूंजी।।''

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 893)

''गुरमुखि साचे का भउ पावै।।
गुरमुखि बाणी अघड़ु घड़ावै।।''

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 941)

''गुपती बाणी परगटु होइ।।
नानक परखि लए सचु सोइ।।''

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 944)

अतः गुरू साहिबान के अनुसार बाणी अनहद है, बाणी अघड़ है, बाणी गुप्त है। आगे हम देखते हैं कि बाणी में अन्य कौन–कौन से गुण समाहित हैं, इस संबंध में गुरू साहिबान कहते हैं :

(क) गुरबाणी : ज्योति स्वरूप है, प्रकाश रूप है :

श्री गुरू नानक देव जी कहते हैं :

''अंतरि जोति निरंतरि बाणी साचे साहिब सिउ लिव लाइ।''

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0634)

(ख) गुरबाणी : सत्य–स्वरूप है :

चतुर्थ पातशाह के अनुसार :

**''से बडभागी जि तुधु धियाइदे जिन सतगुरू मिलिये।।
सतगुर की बाणी सति सरूपु है गुरबाणी बणीए।।''**

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 304)

(ग) गुरबाणी : नाद और अनाहद ध्वनि है :

**''सभि नाद बेद गुरबाणी।।
मन राता सारिंग पाणी।।''**

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 879)

(घ) गुरबाणी : हरिनाम की प्राप्ति का साधन है :

तृतीय पातशाही फर्माते हैं :

**''गुरू सेवा ते करनी सार।। राम नाम राखहु उरि धार।।
गुरबाणी वरती जग अंतरि इसु बाणी ते हरि नाम पाइदा।।''**

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 1066)

(ड) गुरबाणी : शब्द है :

**श्री गुर अमरदास जी फर्माते हैं
''सची बाणी सचि धुनि सचु, सबदु वीचारा।।
अनदिनु सच सलाहणा धनु धनु बडभाग हमारा।।''**

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 564)

गुरबाणी में ''शब्द'' अथवा ''वाणी'' का जो वर्णन मिलता है, उसका उल्लेख अन्य धार्मिक ग्रन्थों में भी मिलता है।

ऋग्वेद में अम्बयनी सूक्त वाक्य में इस संबंध में कहा गया है कि ''वाणी'' कहती है :

''मुझसे ही सब देवताओं का वास है, मैं सबका पालन–पोषण करती हूँ। मैं ही सब जगत् को हिलाती हूँ, भाव गतिमान रखती हूँ। मेरे आश्रय ही सब कुछ चल रहा है सर्व कर्मों की मैं ही पूर्ति करती हूँ।''

**''महत तन्नाय गुह्यं पुरूस्पृग।।
चेन भूतं जनयो येन भव्यम्।।''**

(ऋग्वेद, मंडल–10, सूक्त 225)

अर्थात् ''वह गुप्त नाम महान है और दूर–दूर तक फैला हुआ है, जिसके द्वारा तू वर्तमान एवं भविष्यकी सब रचना करता है।''

गुरूवाणी के अनुसार, ''वाणी'' शास्त्रों, वेदों व तीनों लोकों को बनाने वाली है और सबसे अद्भुत है :

**''सासतु बेद सिमृिति सरू तेरा सुरसरी चरण समाणी
साखा तीनि मूल मति रावै तू ता सरब विडाणी।।
ताकै चरण जपै जनु नानकु बोले अमृत बाणी।।''**

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 422)

ईसाईयों की अंजील में ''शब्द'' को वर्ड (वतक) कहा गया है। सेंट जान की अंजील के आरम्भ में आता है, ''आदि में शब्द था, शब्द, परमेश्वर के साथ था और शब्द परमेश्वर था, जो कुछ बना है, शब्द का बनाया बना है और कोई चीज़ ऐसी नहीं, जो बिना उसके बनाए बनी हो।''
(In the beginning was the word, the word was with god, and the word was god; all things were made through him, and without him, was not anything made that was made)

गुरूबाणी में भी कहा गया है कि शब्द सृष्टि को लिए खड़ा है, शब्द ही उत्पत्ति व प्रलय करने वाला है :

**''एको सबदु एको प्रभु बरतै
सभ एकतु ते उतपति चलै।।
नानक गुरमुखि मेलि मिलाए
गुरमुखि हरि हरि जाइ रलै।।**

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 233)

उपर्युक्त वर्णित गुरू सहिबान द्वारा कहे गए वचनों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गुरूबाणी अथवा शब्द अथवा नाम–ज्योति–स्वरूप है, सत्य–स्वरूप है, नाद युक्त, अनाहत ध्वनि है, शब्द रूप है, व हरि नाम की प्राप्ति का साधन है।

अतः हम देखते है कि जीव इससे लाभान्वित किस प्रकार होता है। इससे जीव अंतर ज्ञान से प्रकाशमान होता है और अज्ञान का अहंकार अंधकार तिरोहित हो जाता है। यह संसार रोगयुफ है और नाम औषधि है। गुरू के वचन सदैव निर्मल व प्रकाशमान है। उस सत्य के तीर्थ में जब जीव स्नान करता है तो उसके अंतर का मैल धुल जाता है, व जीवात्मा स्वयं प्रकाशमान हो जाती है :

**''संसार रोगी नामु दारू मैलु लागै सच बिना।।
गुरवाकु निरमुल सदा चानणुं नित साचु तीरथु मंजना।।''**

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 687)

और कौन–कौन से मैल और विकार अथवा रोग उस वाणी अथवा शब्द रूपी औषधि से धुल जाते हैं, हउमैं रोग, भय का रोग, ममता का रोग, क्रोध व भ्रम आदि का रोग :

**गुरबाणी सद मीठी लागी पाप विकार गवाइआ।।
हउमैं रोगु गइआ भउ भागा सहजे सहजि मिलाइआ।।**

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 773)

अन्तर में बज रही अनहद ध्वनि से बाणी अथवा शब्द को सुनने से मन स्थिर हो जाता है और जीव अंतर में बरस रही अमृत धारा का पान करना प्रारम्भ कर देता है।

और हरि रस के चखने का क्या परिणाम होता है :
"मिलि संगति सरधा उपजै गुर सबदि हरि रसु चाखु।।
सभु मनु तनु हरिआ होइआ गुरबाणी हरि गुणभाखु।।
(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 997)

अब यह बात तो स्पष्ट हो जाती है कि अंतर में निर्मल, अमृत रस के पीने से जीवात्मा निर्मल हो जाती है, और अपने वास्तविक स्वरूप हो प्राप्त होती है, परन्तु यहॉ पुनः जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि वह अमृत रस अंतर में कहॉ पर बरस रहा है? वह शब्द नाम की ध्वनि, अंतर में किस स्थान पर हो रही है? गुरू साहब फर्माते
है :

"अमृित रस सतिगुरू चुआइया।।
दसवैं दुआरि परगटु होइ आंइआ।।
तह अनहद सबद वजहि धुनि बाणी सहजे समाइहे।।"
(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0206)

सतगुरू जीव को दसवें द्वार पर पहुॅचा देते हैं जहॉ अमृत रस बरस रहा है, और अनहद शब्द की ध्वनि गुंज रही है।

अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि गुरूवाणी के अंतर में प्रकट हो जाने से आत्मा इतनी निर्मल हो जाती है कि वह परमात्मा रूप ही हो जाती है। परन्तु यहॉ पर पुनः जिज्ञासा उदित होती है क क्या जीव स्वयं इसे प्राप्त कर सकता है? गुरबाणी कहती है कि नहीं, क्योंकि :

"मनि मैले भगति न होवई नामु न पाइआ जाइ।।"
(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ038)

जीव को वह अलौकिक वाणी, दिव्य शब्द अथवा अनहद ध्वनि—मात्र गुरू से ही प्राप्त क्यों होती है? क्या वह स्वयं इस पद व प्रतिष्ठा का अधिकारी नहीं हो सकता? कहा गया है कि केवल सदगुरू ही तीनों लोगों को शान्ति पहुॅचाने वाले, व तीनों लोकों को प्रकाश देने वाले होते हैं :

"गुर दाता गुरू हिवै घर गुरू दीपकु तिह लोइ।।"
(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0864)

और कितने ही सूर्य, चन्द्र प्रकट क्यों न हो जाएं, सदगुरू के बिना अंधकार नहीं जाता :

"जे सउ चंदा उगवाहि सूरज चढ़हि हज़ार।।
ऐते चानण होंदिआ गुर बिन घोर अंधार।।"
(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 204)

अति विकट स्थिति है, गुरू साहिब फर्माते है कि हज़ारों चन्द्र, सूर्य उदय हो जाने पर भी जीव के अन्तर का अंधकार नहीं जाता, इतना प्रकाश होने पर भी जीवात्मा स्वयं अपने माया के पर्दे उतार फेंकने में समर्थ क्यों नहीं होता? इसके लिए सद्गुरू ही की शरण लेने की आवश्यकता क्यों कर हैं? इसका उत्तर गुरू साहिब देते हैं :

''सचै सबदि सचि पति होई।।
बिनु नावै मुकति न पावै कोई।।
बिनु सतगुरू को नाउ न पाए।।
प्रभु ऐसी बनत बनाई हे।।

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 204)

सच शब्द से ही सच्ची इज्जत मिलती है और सच्चे नाम के बिना कोई मुक्ति नहीं पा सकता। गुरू अमरदास जी महाराज फर्माते हैं कि उस प्रभु अकाल पुरूख ने स्वयं से मिलने की युक्ति ही ऐसी बनाई है कि बिना सतगुरू को कोई नाम की प्राप्ति नहीं कर सकता और यह युक्ति उस स्वयं प्रभु समर्थ के द्वारा बनाई गई है जिसके लिए प्रथम पातशाह फर्माते हैं।

''1ओकार सतनामु करता पुरूख निरभउ
निरवैरू अकाल मूरति अजूनि सैभं
गुरप्रसाद।।''

अकाल पुरूख जो सदा एक है, सत्यस्वरूप है, जो कर्त्ता पुरूख है, निर्भय है, निरर्वर है, अकाल मूरति है, योनि रहित है, स्वयंभू है —— ऐसे समर्थ परमेश्वर की पहचान व प्राप्ति कैसे होती है —— गुरू प्रसादि, सतगुरू की कृपा से।

गुरूवाणी का महावाक्य है कि सतगुरू की सेवा करने से चारों पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं, इसके लिए सतगुरू शरण परमावश्यक है।

पंचम पातशाह फर्माते हैं :
'चार पदारथ जे को मांगै।।
साध जना की सेवा लागै।।

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0266)

'अरथ धरम काम मोख का दाता।।
पूरी भरी सिमर सिमर विधाता।'
साध संगि नानकि रंगु माणिआ।।
घरि आइआ पूरै गुरि आणिआ।।''

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 805)

ये चार पदार्थ कौन—कौन से हैं — ये हैं : 'काम, अर्थ, धर्म और मोक्ष। काम से भाव कामना अथवा इच्छा से है। सतगुरू की कृपा से जीव की समस्त कामनाएं पूर्व होती हैं।

चतुर्थ पातशाह श्री गुरू रामदास जी महाराज फरमाते है :

''इछा पूरकु सरब सुखदाता
हरि जाकै वसि है कामधेना।'

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 669)

अर्थ से भाव है धन—दौलत की चाह।

चतुर्थ पातशाह फर्माते हैं :

'धरम अरथ अरू काम मोख देते नहीं बार।'

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0816)

सतगुरू सेवा से प्रसन्न होकर जीव को धन धान्य से, यहॉं तक कि मोक्ष तक से निवाज़ देते हैं।

धर्म से क्या भाव है? प्रथम पातशाह फरमाते हैं कि सम्पूर्ण सृष्टि धर्म के आधार स्थित है, जो दया से उत्पन्न हुआ है और संतोष रूपी सूत अर्थात् धागे ने इसको बहुत सामंजस्यपूर्ण ढंग से बांध रखा है :

'धौलु धरमु दइआ का पूतु।।
संतोखु थापि रखिआ जिनि सूति।।

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 3–13)

हिन्दु शास्त्रों ने धर्म के दस अंश बताए हैं :

'खिमा अहिंसा दया मृदु सत बचन तप दान।।
सील शौच तृशना बिना धरम लिंग दस जान।।

(पं0 हरदयाल : सारूक्तावली)

ये अंग सन्तों की शरण में आने से सहज की प्राप्त हो जाते हैं। जीव का जीवन निर्मल हो जाता है, पवित्र हो जाता है और हृदय शुद्ध हो जाता है। जीव के अन्तरमन के विकार, झूठ, फरेब कपट आदि सब नष्ट हो जाते हैं :

तीसरी पातशाही का फरमान है :

'गुर बिनु सहजु न उपजै भाई पूछहु गिआनीआ जाइ।।
सतिगुरू की सेवा सदा करि भाई विचहु आप गवाइ।।

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 638)

चतुर्थ पातशाह का फरमान है :

'सतिगुरू की सेवा निरमली निरमल जनु होइ सु सेवा धाले।।
जिन्ह अंदरि कपटु विकार
झूठु ओइ आपे सचै वखि कंढे जजमाले।।'

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 304)

अतः तीसरी पातशाही श्री गुरू अमरदास जी महाराज फरमाते हैं कि सतगुरू अपनी कृपा से जब जीव से इन सभी प्रकार की सेवा करवा कर उसे निर्मल व पवित्र कर लेते हैं तो अपनी दया से वे जीव के भीतर गुरबाणी, वह शब्द, वह प्रकाश प्रकाशित कर देते हैं। जब ज्ञान का प्रकाश जीव के भीतर हो जाता है तो अज्ञान का अंधेरा स्वतः ही तिरोहित हो जाता है।

तृतीय पातशाही श्री गुरू अमरदास जी फरमाते हैं :

'गुरबाणी इसु जग महि चानणु करमि वसे मनि आए।।''

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 67)

इस गुरबाणी के पश्चात् निष्कर्षतः हम इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि 'गुरबाणी का महत्त्व' कहने सुनने से न्यारा है। गुरबाणी 'इसु जग महि चानणु' गुरू साहिब का यह महावाक्य निश्चित ही अद्भुत है, सत्य है, अकाल पुरूख, परमेश्वर की अपार कृपा से जब जीव को सदगुरू की प्राप्ति हो जाती है तो वे अपने दिव्य वचनों, उपदेश अथवा वाणी से जीव के अन्तर में ज्ञान का वह दीपक प्रज्ज्वलित कर देते हैं, जिसका प्रकाश यहाँ पर चिरकाल से विद्यमान महाअंधकार को पल भर में तिरोहित कर देता हैं :

'गिआन अंजनु गुरि दीआ अगिआन अंधेरू बिनासु।।
हरि किरपा ते संत भेटिआ नानक मनि परगासु।।'

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ0 293)

और जीव के अन्तर में सोई हुई ईश्वरीय शक्तियों को झकझोर कर जगा देता हैं और वह जीव को उसी की शक्तियों का वास्तविक स्वामित्व प्रदान करता है। अपने वास्तविक स्वरूप का बोध हो जाने पर जीव, अन्ततोगत्वा परमपद का अधिकारी हो जाता है।

अतः एक जिज्ञासु एवं समुक्षु को इस गरिमामयी पद की प्राप्ति हेतु प्रथम पातशाही श्री गुरू नानक देव जी महाराज के निम्नलिखित फरमान का स्मरण सदैव अभीष्ट है :

'बूझहु हरिजन सतिगुरू बाणी।।
एह जोबनु सासु है देह पुराणी।।
आज कालि मरि जाइए प्राणी
हरि जपु जपि रिदै धिआईहे।।'

(गुरू ग्रन्थ साहिब, पृ01025)

संदर्भिका

1. तुलसीदास, रामचरितमानस, गोरखपुर : गीता प्रेस, चतुर्थ संस्करण
2. भट्ट, नागेश, वैयाकरण सिद्धान्त मंजूषा, बनारस : चौखम्बा संस्कृत सीरिज, 1899
3. महर्षि वेद व्यास प्रणीतम् अर्थ श्री गरूड़ पुराणम।
4. मुण्डकोपनिषद
5. ऋग्वेद
6. श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी, शिरोमणि गुरूद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर
7. श्रीमद्भगवद् गीता, गोरखपुर : गीता प्रेस , पंचम संस्करण कोश :
1. गुरू शब्द रत्नाकर महारकोश, भाई काहन सिंह, पटियाला : भाषा विभाग, पंजाब, 1974